प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर स्तुति एवं परिचय

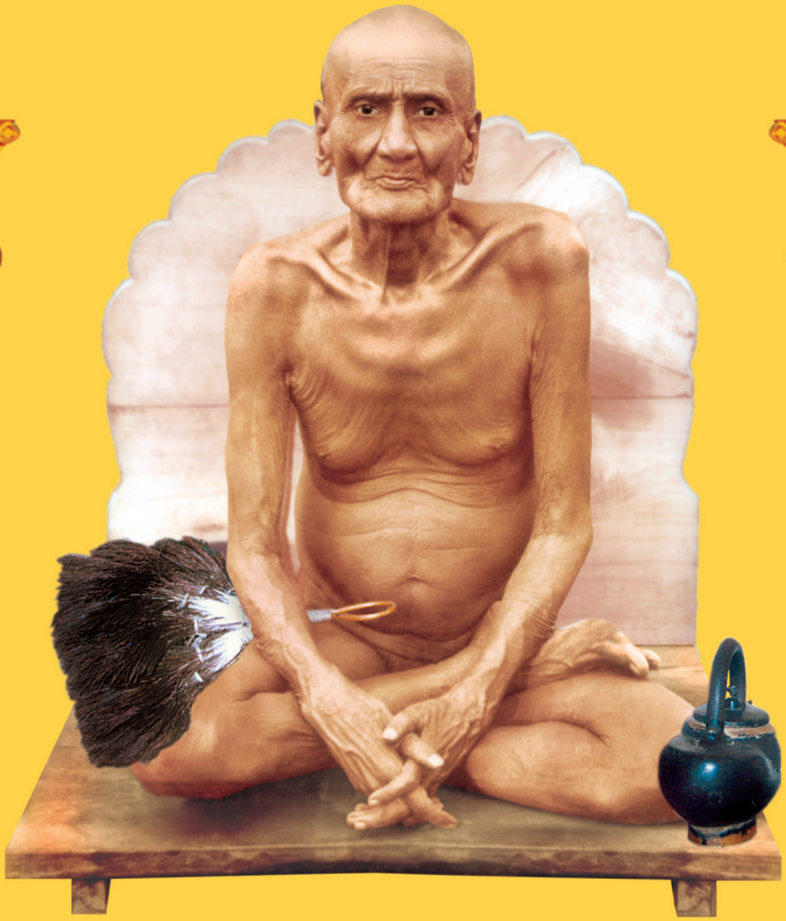

-रचयित्री-
गणिनीप्रमुख आर्यिका ज्ञानमती

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 512
ISBN No.-978-93-87891-28-9

प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर स्तुति एवं परिचय

(आचार्य श्री वीरसागर स्तुति सहित)

–: रचयित्री : –

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

ऋषभदेवपुरम्-मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से महामहिम राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविन्द द्वारा उद्घाटित विश्वशांति अहिंसा वर्ष (2018-2019) के अन्तर्गत एवं प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर अंतर्राष्ट्रीय मुनि दीक्षा शताब्दी महोत्सव वर्ष (2019-2020) के अन्तर्गत उनकी 64वीं पुण्यतिथि (भाद्रपद शु. एकम्, 31 अगस्त 2019) के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र. फोन नं.- (01233) 280184, 280994

Website : www.jambudweep.org, E-mail : jambudweeptirth@gmail.com

प्रथम संस्करण	भाद्रपद शु. एकम्	मूल्य
1100 प्रतियाँ	31 अगस्त 2019	20/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

-: निर्देशक एवं सम्पादक :-

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

-: प्रबंध सम्पादक :-

डॉ. जीवन प्रकाश जैन

(सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन)

कम्पोजिंग-ज्ञानमती नेटवर्क, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

प्रस्तावना

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी

मंगलं प्रथमाचार्यः, सूरि श्रीशान्तिसागरः।
मंगलं पट्टशिष्यः स्यात्, सूरिः श्री वीरसागरः।।1।।

सम्पूर्ण जगत् के लिए मंगलस्वरूप बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज का गुणगान शब्दों में करना यद्यपि सागर को चुल्लू (हाथ की अंजुली) में समेटने सदृश बालचेष्टा है, किन्तु फिर भी महावीर के लघुनन्दन परमयोगी गुरूणांगुरु के गुणों का स्मरण, संस्तवन करना उनके प्रति समर्पण का प्रतीक है।

इस युग की जीवन्त सरस्वतीस्वरूपा पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने उन आचार्यदेव के 4-5 बार साक्षात् दर्शन करके जो दिव्य शक्ति प्राप्त की है उसी की प्रतिफल इनकी साहित्यिक कृतियों में झलकता है। जहाँ चार सौ से अधिक ग्रंथों की रचना करके पूज्य माताजी ने भारतीय जैन साहित्य भण्डार को समृद्ध कर भगवान महावीर शासन की प्रथम लेखिका साध्वी के रूप में प्रथम कीर्तिमान स्थापित किया है, वहीं उनके हृदय की अपार गुरुभक्ति को प्रदर्शित करने वाली प्रस्तुत कृति ''प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर स्तृति संग्रह'' नाम की पुस्तक पाठकों तक पहुँच रही है। इसके द्वारा आप सभी ''आचार्य शान्तिसागर मुनि दीक्षा शताब्दी वर्ष'' के अन्तर्गत अपनी समाज में बच्चे-युवा-महिला सभी वर्ग को आचार्यश्री की संस्कृत-हिन्दी स्तुतियाँ कण्ठस्थ करावें तथा आचार्यश्री के जीवन से सबको परिचित कराने हेतु संगोष्ठी-व्याख्यानमाला आदि कार्यक्रम आयोजित करें।

अपने नगर के स्थानीय विद्यालय-महाविद्यालय आदि में भी बच्चों को यह पुस्तिका वितरित करके प्रश्नमंच-भाषण प्रतियोगिताएं भी आयोजित करें। इसी प्रकार इस पुस्तक में आचार्यश्री के प्रथम शिष्य-प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर मुनिराज की भी स्तुति और परिचय है, आश्विन कृ. अमावस्या को उनकी पुण्यतिथि पर भी कार्यक्रम आयोजित करने में इसका उपयोग करें।

पूज्य माताजी की इस अमूल्य कृति का सदुपयोग कीजिए यही इसके प्रकाशन की सार्थकता है।

भजन

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी

तर्ज –चल दिया छोड़.....

श्री शांतिसिंधु मुनिराज, जगत सरताज, प्रथम ऋषिराजा
युग के मुनि मार्ग विधाता।।
थे भोजग्राम के राजकुंवर।
माँ सत्यवती के पुत्रप्रवर।।
जन्मे जग के कल्याण हेतु सुखदाता।। युग के.....।।1।।
जैसे रवि तिमिर भगाता है।
जग में प्रकाश फैलाता है।
यूं ही मिथ्यात्व तिमिरनाशक गुरु गाथा। युग के.....।।2।।
मुनि के दर्शन जब दुर्लभ थे।
देवेन्द्रकीर्ति इक गुरुवर थे।।
वे बने शांतिसागर मुनि के निर्माता।। युग के.....।।3।।
मुनिचर्या तब जीवन्त हुई।
जिनवाणी सार्थक सिद्ध हुई।।
कलियुग भी सत्पुरुषों का जन्मप्रदाता।। युग के.....।।4।।
है वर्तमान गौरवशाली।
उस एक वृक्ष की ही डाली।।
फल फूल रही वंशावलि गौरव गाथा।। युग के.....।।5।।
आचार्य प्रथम वे मान्य हुए।
युग में सबसे प्राधान्य हुए।।
उत्कृष्ट समाधिमरण से जोड़ा नाता। युग के.....।।6।।
हम भी परोक्ष यशगान करें।
गुरुवर का मन में ध्यान करें।।
''चन्दनामती'' वन्दना करें नत माथा।। युग के.....।।7।।

चारित्रचक्रवर्ती प्रथमाचार्य

श्री शांतिसागर स्तुतिः

(सप्तविभक्ति समन्वित)

श्रीशान्तिसागरः सूरिः, प्रथमाचार्य इष्यते।
श्रीशान्तिसागराचार्यं, श्रयामि वृत्तलब्धये।।1।।

श्रीशांतिसागरेणात्र, मुनिमार्गः प्रदर्शितः।
श्रीशान्तिसागरायाद्य, कोटिशो मे नमो नमः।।2।।

श्रीशान्तिसागराचार्यात्, जाता धर्मप्रभावना।
श्रीशान्तिसागरस्येह, भाक्तिका मोक्षमार्गिणः।।3।।

श्रीशान्तिसागराचार्ये, समाविष्टा गुणा यतेः।
हे शान्तिसागराचार्य! मामुद्धर भवाब्धितः।।4।।

श्री शांतिसागर स्तुतिः

–भुजंगप्रयात छंद –

सुरत्नत्रयैः सद्व्रतैर्भ्राजमानः। चतुःसंघनाथो गणीन्द्रो मुनीन्द्रः।।
महा-मोह-मल्लैक-जेता यतीन्द्रः। स्तुवे तं सुचारित्रचक्रीशसूरिम्।।1।

भवव्याधिनाशाय दिग्वस्त्रधारी। भवाब्धेः तितीर्षुः जगद्दुःखहारी।।
भवातंकविच्छित्तयेहं श्रितस्वां। स्तुवे शांतिसिंधुं महाचार्यवर्यं।।2।।

महाग्रंथराजं सुषट्खण्डशास्त्रं। सुत्ताम्रस्य पत्रे समुत्कीर्णमेव।।
अहो! त्वत्प्रसादात् महाकार्यमेतत्। प्रजातं सुपूर्णं चिरस्थायि भूयात् ।।3।।

अनेके सुशिष्याः प्रसिद्धास्तवेह। स्तुवे वीरसिंधुं महाचार्यवर्यं।।
शिवाब्धिं च सूरिं गुणाब्धेः समुद्रं। मुदा पट्टसूरिं स्तुवे धर्मसिंधुम्।।4।।

महासाधवोऽप्यार्यिकाः क्षुल्लकाद्याः। प्रसादात् हि ते श्रावकाद्याश्च जाताः।।
सुनक्षत्रवृंदैर्युतश्चंद्रमाः खे। सुसंघैर्युतः शांतिसूरिः स्तुवे त्वां।।5।।

महाकल्पवृक्षं महाचार्यरत्नं। कृपासागरं शांतिसज्ज्ञानमूर्तिम्।।
गभीरं प्रसन्नं महाधीरवीरं। महातीर्थभक्तं सदा त्वां प्रवन्दे।।6।।

–पृथ्वी छंद –

नमोऽस्तु मुनिचंद्र! ते भविककैरवाल्हादकृत्।
नमोऽस्तु मुनिसूर्य! ते जनमनोऽन्धकारांतकृत्।।
नमोऽस्तु गुरुवर्य! ते सकलभव्य-चिंतामणे!
जयेति जय सूरिवर्य! भुवि शांतिसिंधो! सदा।।7।।

श्रीशांतिसागराचार्यं, वंदे भक्त्या पुनः पुनः।
बोधिर्ज्ञानमती-सिद्धि-र्भूयात् मे पूर्णशांतिदा।।8।।

आचार्य श्री शांतिसागर स्तुति

–दोहा –

शांतिसागराचार्य को, नमूँ नमूँ शत बार।
सम्यक् चारित प्राप्त हो, मिले स्वात्मनिधि सार।।1।।

–शंभु छंद –

दक्षिण भारत के भोजग्राम में, धर्मनिष्ठ श्रेष्ठी प्रसिद्ध।
पाटील भीमगौंडा उन भार्या-सत्यवती पतिव्रता सिद्ध।।
ईस्वी सन् अठरह सौ बाहत्तर, वदि अषाढ़ षष्ठी तिथि थी।
बालक ने जन्म लिया उस नाम-सातगोंडा था रखा तभी।।2।।

बचपन यौवन था धर्ममयी, वैराग्यभाव वृद्धिंगत थे।
उन्नीस शतक चौदह सन् में, सुदि ज्येष्ठ मास तेरस तिथि के।।
देवेन्द्रकीर्ति मुनि से उत्तूर-ग्राम में क्षुल्लक दीक्षा ली।
उन्नीस शतक बीस फाल्गुन सुदि-चौदस में मुनि दीक्षा ली।।3।।

देवेन्द्रकीर्ति गुरु से दीक्षित, मुनिराज दिगम्बर मान्य हुए।
समडोली पंचकल्याणक में, आचार्य सर्व प्राधान्य हुए।।
उन्निस सौ चौबिस ईस्वी सन्, चउविधसंघ के मुनिनाथ बने।
आगम अनुकूल विहित चर्या, कलियुग में भी शिवमार्ग बने।।4।।

ईस्वी सन् उन्निस सौ सैंतीस, गजपंथा सिद्धक्षेत्र सुंदर।
चारित्र चक्रवर्ती पद से, भूषित सब जग पूजित गुरुवर।।
पूरे भारत में भ्रमण किया, सब जिन तीर्थों की यात्रा की।
मुनि दीक्षा क्षुल्लक ऐलक औ, आर्यिका क्षुल्लिका दीक्षा दी।।5।।

शिष्यों को दीक्षा शिक्षा दे, मुनि परंपरा अक्षुण्ण किया।
ऐसे गुरुवर की शरणा ले, मैंने भी संयम लब्धि लिया।।

इस समय चतुर्विध संघ सर्व, इन गुरुवर तरु के फूल व फल।
संयमपथ निराबाध दिखता, इन गुरु की कृपादृष्टि का फल।।6।।

कुलभूषण देशभूषण प्रतिमा, कुंथलगिरि पर स्थापित कीं।
श्री सीमंधर आदिक प्रतिमा, दहिगांव क्षेत्र में स्थापित की।।
आचार्य प्रेरणा पा करके, कुंभोज आदि बहु तीर्थ बने।
बहु पंचकल्याण प्रतिष्ठाएं, बहु धर्मप्रभावक क्षेत्र बने।।7।।

षट्खंडागम धवलादि ग्रन्थ, श्रुतभक्ती से छपवाये हैं।
तांबे पर भी उत्कीर्ण करा, स्थायी ग्रंथ बनाये हैं।।
जिनदेवों की प्रतिमाओं की, अतिशायि प्रतिष्ठा करवायी।
जिन आगम को छपवा करके, जिन आगम रक्षा करवायी।।8।।

कुलभूषण देशभूषण मुनि ने, जहाँ पर निज आत्मा सिद्ध किया।
वहाँ पर ही प्रत्याख्यान मरण-विधि से तुम सल्लेखना लिया।।
ईस्वी सन् उन्निस सौ पचपन, भादों सुदि दूज तिथी आई।
'सिद्धाय नमः' जपते जपते, गुरुवर ने देवगती पाई।।9।।

हैं देव-शास्त्र-गुरु रत्न तीन, रत्नत्रय को देने वाले।
इनके सर्जक इनके वर्द्धक, इनकी भक्ती करने वाले।।
हे शांतिसागराचार्यप्रवर ! चारित्रचक्रवर्ती गुरुवर।
मैं भक्ति करूँ सज्ज्ञानमती, सह पाऊँ स्वात्म सौख्य सत्त्वर।।10।।

ॐ ह्रीं विश्वशांतिकराय श्रीऋषभदेवाय नमः।
ॐ ह्रीं श्रीशांतिसागराचार्यपरमेष्ठिने नमः।

आचार्य श्री शांतिसागर स्तुति

–दोहा –

शांतिसागराचार्यगुरु, मोक्षमार्ग के रूप।
मन वच तनु से नित नमूँ, पाऊँ स्वात्म स्वरूप।।1।।

–शंभु छंद –

जय जय आचार्य शांतिसागर, अठबीस साधु गुण से मंडित।
जय जय चारित्र चक्रवर्ती, पाठक के पच्चिस गुण अन्वित।।
बीसवीं सदी के आप प्रथम, आचार्य दिगंबर हुए प्रथित।
शिष्यों का संग्रह किया अनुग्रह-निग्रह गुण से भी संयुत।।2।।

नाना विध तपश्चरण करके, अद्भुत महिमा पायी जग में।
इस युग में यद्यपि ऋद्धि न हों, फिर भी कुछ अंश दिखा तुममें।।
बहुतेक भव्य तुम भक्ती से, नाना विध कष्ट निवारे थे।
तुम चरणोदक मस्तक धरकर, कुष्ठादि रोग भी टारे थे।।3।।

सर्पादिक के उपसर्गों को, धीरज से सहन किया तुमने।
उपसर्ग आदि करने वाले, दुष्टों को क्षमा किया तुमने।।
पैंतिस वर्षों तक मुनी रहे, बहुविध उपवास किये तुमने।
साढ़े पचीस वर्षों की जो, गणना गायी विद्वत्गण ने।।4।।

चारित्र शुद्धिव्रत-बारह सौ, चौंतिस उपवास किये तुमने।
पुनरपि तीस चौबीसी व्रत, जो सात शतक बीस गिनने।।
शुभ कर्मदहनव्रत तीन बार, करके कर्मों को क्षीण किया।
तीर्थंकर प्रकृतिकारण षोडश-कारण व्रत सोलह बार किया।।5।।

अति घोर सिंहनिष्क्रीडितव्रत, विधिवत् गुरु ने त्रयबार किये।
दशलक्षण आष्टान्हिक व्रत भी, उपवास विधी से पूर्ण किये।।

गुरुवर के सब नव हजार तीन सौ-अड़तिस दिन उपवासों में।
फिर भी शरीर में शक्ती थी, तुम कायबली सम थे जग में।।6।।

चारों अनुयोगों को पढ़कर, निज मनुज जन्म का सार लिया।
फिर समयसार पढ़कर आत्मा को, समयसारमय बना लिया।।
वर ग्रन्थ भगवती आराधन, छत्तीस बार पढ़कर तुमने।
स्वातम आराधन कर अंतिम, सुसमाधिमरण पाया तुमने।।7।।

इस दुषमकाल में हीन संहनन, धारी नर नारी मानें।
उनमें से एक आप ही तो, उत्तम शक्ती युत सब जानें।।
तीर्थों की तीर्थकरों की भी, भक्ती अतिशायी दिखलायी।
जिनआगम की भक्ती से तो, आगम भी हुआ अति स्थायी।।8।।

गुरुओं की भक्ती स्वयं किया, बहुते मुनियों का सृजन किया।
इन देव शास्त्र गुरु भक्ती से, निज का रत्नत्रय शुद्ध किया।।
हे शांतिसागराचार्य वर्य! मैं नमूँ सहस्रों बार नमूँ।
चारित्रचक्रवर्तिन् गुरुवर! मैं निज रत्नत्रय हेतु नमूँ।।9।।

गुरु भक्ती से सम्यक्त्वरत्न, निर्दोष सुरक्षित अविचल हो।
गुरु भक्ती से सज्ज्ञानरत्न, निज भासे नित वृद्धिंगत हो।।
गुरु भक्ती से चारित्ररत्न, अंतिम क्षण तक मुझ साथ रहे।
गुरुभक्ती से तप आराधन, करने में उत्सुक चित्त रहे।।10।।

हे गुरुवर! तव प्रसाद से ही, श्रीवीरसागराचार्य मिले।
जिनके प्रसाद से रत्नत्रय का, लाभ मिला गुण पुष्प खिले।।
तब तक मन में गुरुभक्ति रहे, जब तक नहिं आत्मा सिद्ध बने।
कैवल्य 'ज्ञानमति' पाने तक, गुरुभक्ती भवदधि नाव बने।।11।।

–दोहा –

त्रिभुवन के भी पूज्य गुरु, जिनमुद्रा से वंद्य!
नमूँ नमूँ नत शीश कर, पाऊं परमानंद।।12।।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम आचार्य
चारित्र चक्रवर्ती १०८ श्री शांतिसागर जी महाराज

स्वस्ति श्री मूलसंघ में कुंदकुंदाम्नाय, सरस्वती गच्छ, बलात्कार गण में बीसवीं शताब्दी में प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य-चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज हुए हैं।

जन्म	– आषाढ़ बदी 6, सन् 1872
ग्राम	– ग्राम-भोजगाँव (जिला-बेलगाँव) कर्नाटक
नाम	– सातगौंडा पाटिल
माता-पिता	– माता-सत्यवती, पिता-भीमगौंडा पाटिल
क्षुल्लक दीक्षा	– ज्येष्ठ शु. 13, सन् 1914 ग्राम-उत्तूर (जि. कोल्हापुर) महाराष्ट्र
दीक्षा गुरु	– मुनि 108 श्री देवेन्द्रकीर्ति जी महाराज
ऐलक दीक्षा	– सन् 1917 गिरनार क्षेत्र, स्वयं भगवान के चरण सानिध्य में
मुनि दीक्षा	– फाल्गुन शु. 14, सन् 1920 ग्राम-येरनाल (जिला-बेलगांव) कर्नाटक
दीक्षा गुरु	– मुनि श्री 108 देवेन्द्रकीर्ति जी महाराज
आचार्य पद	– आश्विन शु. 11, सन् 1924 ग्राम-समडोली (जिला-सांगली-महाराष्ट्र) द्वारा-चतुर्विध संघ
चारित्र चक्रवर्ती पद	–सन् 1937 गजपंथा सिद्धक्षेत्र (महा.)
समाधिमरण	– द्वि. भाद्रपद शु. 2, सन् 1955, कुंथलगिरि (सिद्धक्षेत्र)

आचार्यश्री का संक्षिप्त परिचय

आचार्य देव ने अनेक दीक्षाएँ देकर चतुर्विध संघ सहित दक्षिण से उत्तर और पूर्व से पश्चिम तक सारे भारत में मंगल विहार करके दिगम्बर जैन मुनि परंपरा को पुनरुज्जीवित किया। अनेक तीर्थों पर जिनप्रतिमाएँ स्थापित करायीं, षट्खण्डागम ग्रंथ को ताम्रपट्ट पर उत्कीर्ण कराकर तथा विद्वानों से उनका हिन्दी अनुवाद करवाकर पुस्तकों के रूप में भी प्रकाशित करवाकर जिनवाणी को स्थायित्व प्रदान किया। ऐसे बहुत से जिनधर्म प्रभावना के कार्यों से इस भूतल पर अपने यश को चिरस्थायी कर दिया।

आपने अंत में कुंथलगिरि क्षेत्र पर सल्लेखना लेकर अपने जीवनकाल में अपना आचार्यपद अपने प्रथम शिष्य मुनि श्री वीरसागर को प्रदान किया था। पुनः उनकी परम्परा में द्वितीय पट्टाचार्य श्री शिवसागर मुनिराज हुए, तृतीय पट्टाचार्य श्री धर्मसागर महाराज, चतुर्थ पट्टाचार्य श्री अजितसागर महाराज, पंचम पट्टाचार्य श्री श्रेयांससागर महाराज, छठे पट्टाचार्य श्री अभिनंदनसागर महाराज हुए हैं, जनवरी सन् 2015 में उनकी समाधि के पश्चात् सप्तम पट्टाचार्य के पद पर श्री अनेकांतसागर जी महाराज को चतुर्विध संघ द्वारा अभिषिक्त किया गया है, जो चतुर्विध संघ का संचालन करते हुए जिनधर्म की प्रभावना कर रहे हैं।

भारत-विहार –

यरनाळ में दीक्षा समारंभ समाप्त होने के अनंतर महाराज ने अनेक नगरों में विहार करके धर्मप्रभावना की। महाराज जी के विहार काल में कोण्णूर का चातुर्मास बड़ा महत्वपूर्ण रहा। यहाँ महाराज की जीवनी में अतिशय महत्वपूर्ण घटनाएं घटीं। कोण्णूर ग्राम में प्राचीन गुफाएं बहुसंख्या में हैं। नित्य की तरह गुफा में आचार्य श्री ध्यानस्थ बैठ

गये। उसी समय एक नागराज–बड़ा सर्प वहाँ आकर महाराज जी के शरीर पर चढ़कर घूमने लगा। महाराज जी अपने आत्मध्यान में निमग्न थे। 'नागराज आया है और वह अपने शरीर पर घूम रहा है' इसका तनिक विकल्प भी महाराज जी को नहीं था। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति की पालना किस प्रकार हो सकती है, इसका यह मूर्तिमान रूप दृष्टिगोचर हुआ। महाराज जी के दर्शनार्थ जो लोग वहाँ पहुँचे थे, उन्होंने यह घटना प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखी। वे साश्चर्य दिङ्मूढ़ हो बैठे रहे। वे सांप से डरते थे। सांप भी जनता से घबड़ाता था। महाराज का आश्रय इसीलिए उसने लिया था। महाराज जी का दिव्य आत्मबल देखकर वहाँ आये हुए यात्रियों में से प्रमुख श्रेष्ठी श्रीमान सेठ खुशालचंद जी पहाड़े और ब्र. हीरालाल जी बड़े प्रभावित हुए। दोनों सज्जन विचक्षण थे। दक्षिण यात्रा के लिए निकले हुए यात्री थे। मिरज पहुँचने के बाद पता चला कि निकट ही दिगम्बर साधु हैं। इसलिए परीक्षा के हेतु वे वहाँ पर पहुँचे थे। उनकी अपनी धारणा थी कि इस काल में साधक का होना असंभव है। भरी सभा में 'क्या आपको अवधिज्ञान है? या आपको ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त है?'' आदि वैयक्तिक आचार विषयक प्रश्न भी पूछने लगे। कुछ उलाहना का अंश भी जरूर था। सम्मिलित भक्तगणों में कुछ ऐसे जरूर थे, जो इन सवालों का जवाब मुट्ठियों से देने के लिए तैयार हो गये। मुनि महाराज ने भक्तों को रोका। एक-एक सवाल का जवाब यथानाम ''शांतिसागर जी'' ने शांति से ही दिया। समागत दोनों परीक्षक अत्यधिक प्रभावित हुए, उसी समय दीक्षा के लिए तैयार भी हो गये। महाराज जी ने ही उन्हें रोककर यात्रा पूरी करने का और कुटुम्ब परिवार की सम्मति लेने को कहा। जब महाराज बाहुबली (कुम्भोज) आये, तब वहाँ आकर उक्त दोनों सज्जनों ने महाराज जी के पास क्षुल्लक पद की दीक्षा धारण की। दीक्षा के बाद श्री ब्र. हीरालाल जी का क्षुल्लक

"वीरसागर", श्री सेठ खुशालचंद जी क्षुल्लक 'चन्द्रसागर' नामांकन हुआ। समडोली के चातुर्मास में आचार्यश्री के पास क्षुल्लक वीरसागर जी ने निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण की। यही महाराज के प्रथम निर्ग्रंथ शिष्य थे। आचार्यश्री ने आगे चलकर अपने समाधिकाल में श्री वीरसागर महाराज को ही उन्मुक्त भावों से आचार्यपद प्रदान किया।

आचार्यपद की प्राप्ति व महत्वपूर्ण तीर्थरक्षा कार्य –

समडोली ग्राम में ही सर्वप्रथम आचार्यश्री का चतुःसंघ स्थापन हुआ। अब तक केवल अकेले महाराज ही निर्ग्रंथ साधु स्वरूप में विहार करते थे। अब संघ सहित विहार होने लगा। संघ ने उनको 'आचार्य' घोषित किया। आचार्य महाराज का संघ पर वीतराग शासन बराबर चलता था। संघ सहित विहार करते-करते महाराज कुम्भोज से श्री सिद्धक्षेत्र कुंथलगिरी आये। क्षेत्र पर श्री देशभूषण और कुलभूषण मुनिद्वय की चरण पादुकाओं का पावन दर्शन किया। विहारकाल का उपयोग महाराज श्री जाप्य तथा मंत्र स्मरण के लिए विशेष रूप से कर लेते थे।

श्री सम्मेदशिखर जी की ऐतिहासिक पावन यात्रा –

(चलता फिरता वीतरागता और विज्ञानता का विश्वविद्यालय)

ई. सन् 1927 के मार्गशीर्ष वदी प्रतिपदा के दिन श्री सम्मेदशिखर जी क्षेत्र की वंदना और धर्मप्रभावना के उद्देश्य से आचार्यश्री 108 शांतिसागर जी महाराज की विहार यात्रा संघ सहित बाहुबली (कुम्भोज) क्षेत्र से शुरू हुई।

बम्बई निवासी पुरुषोत्तम श्रीमान सेठ पूनमचंद जी घासीलाल जी और उनके सुपुत्रगण आचार्यश्री के पास पहुँचे। उन्होंने आचार्यश्री को ससंघ श्री सम्मेदाचल यात्रा को ले चलने का संकल्प प्रकट किया।

नागपुर में संघ का अपूर्व स्वागत हुआ। जुलूस तीन मील लम्बा निकला था। शहर के बाहर इतवारी में स्वतंत्र 'शांतिनगर' की रचना की

गयी थी। कांग्रेस के पंडाल से शांतिनगर का पंडाल कुछ छोटा नहीं था। जनता आज भी उस समय की अपूर्व घटनाओं की स्मृति से आनंद का अनुभव करती है और स्वयं को धन्य मानती है।

संघ की विदाई हृदयद्रावक थी। साश्रुनयनों से श्रावक-श्राविकाओं को अनिवार्यरूप से विदाई देनी पड़ी। दिनाँक 9 जनवरी 1928 को संघ का नागपुर छोड़कर भंडारा मार्ग से विहार शुरू हुआ। छत्तीसगढ़ के भयंकर जंगलमय विकट मार्ग से निर्बाध होते हुए संघ हजारीबाग आया। बाद में फाल्गुन शुक्ला तृतीया के दिन तीर्थराज श्री सम्मेदशिखर जी सिद्धक्षेत्र को पहुँचा।

यहाँ पर श्री संघपति जी के द्वारा व्यापकरूप में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव द्वारा महती धर्मप्रभावना हुई। भीड़ की सीमा न थी। भारत के कोने-कोने से श्रावक-श्राविकाएँ अत्यधिक प्रमाण में पहुँचे। इसी समय हजार से ज्यादा कपड़ों की झोपड़ियाँ बनवायी गई थीं। धर्मशालाएँ खचाखच भर गईं।

तीर्थक्षेत्र कमेटी तथा महासभा आदि कई सभाओं के अधिवेशन भी हुए। तीर्थराज जयध्वनि से गूँज उठा था। धर्मशालाओं के बाहर भी यत्र-तत्र लोग अपना स्वतंत्र स्थान जमाए हुए नजर आते थे। नीचे धरती ऊपर आसमान, पूर्ण निर्विकल्प होकर जनता प्रतिष्ठा यात्रा के उन्मुक्त आनन्द रस का पान करती थी। लोग कहते हैं यात्री कहीं तीन लाख से ऊपर होंगे। अस्तु! पंडित आशाधरजी के शब्दों में कहना होगा, 'दलित कलिलीला-विलसितम्' यही पर्वतराज का सजीव मनोहारी दृश्य था। अनेक भाषा, अनेक वेशभूषा में व्यापक तत्त्व की एकता का होने वाला प्रत्यक्ष दर्शन अलौकिक ही था। निर्विकल्प वस्तु के अनुभव के समय विशेष का तिरोभाव और सामान्य का आविर्भाव होता ही है ठीक इसी तरह सांस्कृतिक एकता का यह सजीव स्वरूप प्रभावशाली बन गया।

श्री सम्मेदशिखर की वंदना करके वहां से मंदारगिरी, चम्पापुरी, पावापुरी, कुण्डलपुर, राजगृही, गुणावां आदि अनेक पवित्र तीर्थ क्षेत्रों की संघ ने यात्रा की।

शास्त्रशुद्ध व्यापक दृष्टिकोण –

ईसवी सन् 1933 का चातुर्मास आचार्य संघ का ब्यावर (राज.) में था।

महाराज जी का अपना दृष्टिकोण हर समस्या को सुलझाने के लिए मूल में व्यापक ही रहता था। योगायोग की घटना है इसी चौमासे में कारंजा गुरुकुल आदि संस्थाओं के संस्थापक और अधिकारी पूज्य ब्र. देवचंद जी दर्शनार्थ ब्यावर पहुँचे। पूज्य आचार्यश्री ने क्षुल्लक दीक्षा के लिए पुनः प्रेरणा की। ब्रह्मचारी जी का स्वयं विकल्प था ही। वे तो इसीलिए ब्यावर पहुँचे थे। साथ में और एक प्रशस्त विकल्प था कि "यदि संस्था-संचालन होते हुए क्षुल्लक प्रतिमा का दान आचार्यश्री देने को तैयार हों, तो हमारी लेने की तैयारी है।" इस प्रकार अपना हार्दिक आशय ब्रह्मचारी जी ने प्रगट किया। 5-6 दिन तक उपस्थित पंडितों में काफी बहस हुई। पंडितों का कहना था कि क्षुल्लक प्रतिमा के व्रतधारी संस्था संचालन नहीं कर सकते जबकि आचार्यश्री का कहना था कि पूर्व में मुनि संघ में ऐसे मुनि भी रहा करते थे जो जिम्मेवारी के साथ छात्रों का प्रबंध करते थे और ज्ञानदानादि देते थे। यह तो क्षुल्लक प्रतिमा के व्रत श्रावक के व्रत हैं। अंत में आचार्य महाराजजी ने शास्त्रों के आधार से अपना निर्णय सिद्ध किया। फलतः ब्र. श्री देवचंद जी ने क्षुल्लक पद के व्रतों को पूर्ण उत्साह के साथ स्वीकार किया। आचार्य श्री ने स्वयं अपनी आन्तरिक भावनाओं को प्रकट करते हुए दीक्षा के समय "समंतभद्र" इस भव्य नाम से क्षुल्लकजी को नामांकित किया और **पूर्व के समंतभद्र आचार्य की तरह आपके द्वारा धर्म की व्यापक प्रभावना हो,** इस प्रकार के शुभाशीर्वादों की वर्षा की। कहाँ तो बाल की खाल निकालकर

छोटी-छोटी सी बातों को जटिल समस्या बनाने की प्रवृत्ति और कहाँ आचार्यश्री की प्रहरी के समान सजग दिव्य दूर-दृष्टिता?

चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री –

संघ विहार करता हुआ गजपंथा सिद्धक्षेत्र पर आया। यहाँ पर सम्मिलित सब जैन समाज ने आचार्यश्री को ''चारित्र-चक्रवर्ती'' पद से विभूषित किया। महाराजश्री की आत्मा निरंतर निरूपाधिक आत्मस्वरूप के अमृतोपम महास्वाद को सहज प्रवृत्ति से बराबर लेने में परमानंद का अनुभवन करती थी। उन्हें इस उपाधि से क्या? वे पूर्ववत् उपाधि-शून्य स्वभावमग्न ही थे। साधु परमेष्ठी या आचार्य परमेष्ठी के आंतरिक जीवन का यथार्थ दर्शन यह चक्षु का विषय नहीं होता। वह अपनी शान का अलौकिक ही होता है। जहाँ जीवनाधार श्वासोच्छ्वास की तरह इन परमेष्ठियों का श्वांस आत्मा को स्वात्मा में स्थिर बनाये रखने के लिए होता है, वहाँ उच्छ्वास विश्व में अपनी आदर्श प्रवृत्ति के द्वारा शांति स्थापना में और धर्मप्रभावना में उत्कृष्ट निमित्त के रूप में उपस्थित होने के लिए होता है। आचार्यश्री की लोकोत्तम, लोकोत्तर अलौकिकता और वैभवशाली विभूतिमत्ता इसी में थी। ''चारित्र-चक्रवर्ती'' उपाधि का महाराज को तो कोई हर्ष-विषाद ही नहीं था। ''चारित्र के चक्रवर्ती तो भगवान् ही हो सकते हैं। हम तो लास्ट नम्बर के मुनि हैं। हमें उपाधि से क्या? स्वभाव से निरूपाधिक आत्मा ही हमारी शरण है।'' समाज ने उनकी गुणग्राहकता और त्याग-संयम के प्रति निष्ठा का जो औचित्यपूर्ण दर्शन किया, वह योग्य ही हुआ।

टंकोत्कीर्ण श्रुत की टंकोत्कीर्ण सुरक्षा –

वि. सं. 2000 (ई. सन् 1944) की घटना है। आचार्यश्री का चौमासा कुंथलगिरि में था। पं. श्री सुमेरचंद जी दिवाकर से धर्म चर्चा के समय यह पता चला कि अतिशयक्षेत्र मूड़बिद्री में विद्यमान धवला,

जयधवला और महाबंध इन सिद्धान्त ग्रंथों में से महाबंध ग्रंथ की ताड़पत्री प्रति के करीब 5000 सूत्रों का भागांश कीटकों का भक्ष्य बनने से नष्टप्राय हुआ। भगवान महावीर के उपदेशों से साक्षात् संबंधित इस जिनवाणी का केवल उपेक्षामात्र से हुआ विनाश सुनकर आचार्यश्री को अत्यन्त खेद हुआ। आगम का विनाश यह अपूरणीय क्षति है। इनकी भविष्य के लिए सुरक्षा हो तो कैसी हो? इस विषय में पर्याप्त विचार परामर्श हुआ। अंत में निर्णय यह हुआ कि इन ग्रंथराजों के ताम्रपत्र किये जायें और कुछ प्रतियाँ मुद्रित भी हों।

प्रातःकाल की शास्त्र सभा में आचार्यश्री का वक्तव्य हुआ। संघपति श्रीमान् सेठ दाडिमचंद जी, श्रीमान सेठ चंदूलाल जी बारामती, श्रीमान सेठ रामचन्द जी धनजी दावडा आदि सज्जन उपस्थित थे। संघपति जी का कहना था कि जो भी खर्चा हो, वे स्वयं करने के लिए तैयार हैं। फिर भी आचार्यश्री के संकेतानुसार दान संकलित हुआ, जो करीब डेढ़ लाख हुआ।

"श्री 108 चारित्रचक्रवर्ती शांतिसागर दिगम्बर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धार संस्था" नामक संस्था का जन्म हुआ। ग्रंथों के मूल ताड़पत्री प्रतियों के फोटो लेने का और देवनागरी प्रति से ताम्रपट्ट कराने का निर्णय हुआ। नियमावली बन गई। कार्य की पूर्ति के लिए ध्रुवनिधि की वृद्धि करने का भी निर्णय हुआ। कार्य की पूर्ति शीघ्र उचित रूप से किस प्रकार हो, इस विषय में पत्र द्वारा मुनि श्री समंतभद्र जी से परामर्श किया गया। "आर्थिक व्यवहार चाहे जिस प्रकार हो, यदि कार्य पूरा करना है तो कार्यनिर्वाह की जिम्मेदारी किसी एक जिम्मेदार व्यक्ति के सुपुर्द करनी होगी। हमारी राय में श्रीमान बालचंद जी देवचंद जी शाह बी.ए.को यह कार्य सौंपा जाये" इस सलाह के अनुसार कार्य की व्यवस्था बन गई। आचार्यश्री के संकेत को आज्ञा के रूप में श्री सेठ

बालचंद जी ने शिरोधार्य कर कार्य संभाला। प्रतियों के मुद्रण तथा ताम्रपत्र के रूप में टंकोत्कीर्ण कराने का कार्य श्रीमान् विद्यावारिधि पं. खूबचंद जी शास्त्री, श्रीमान् पं. पन्नालाल जी सोनी, श्रीमान् पं. सुमेरचंद जी दिवाकर, श्रीमान् पं.हीरालाल जी शास्त्री, श्रीमान् पं. माणिकचंद जी भीसीकर आदि विद्वानों के यथासंभव सहयोग से पूरा हो पाया; जिसमें 9 वर्षों का समय लगा।

आचार्यश्री की रत्नत्रय साधना अत्यन्त कठोर थी। वे शरीर को पूर्णरूपेण परद्रव्य समझकर उसे कभी-कभी ही आहार प्रदान करते थे।

अपने जीवन में आचार्यश्री ने 25 वर्ष से भी अधिक दिन उपवास में निकाले हैं, जिनकी सूची निम्न प्रकार है–

उपवासों की संख्या	**कितनी बार**	**उपवास के कुल दिन**
1) 16 दिन का	3 बार	48
2) 10 दिन का	1 बार	10
3) 9 दिन का	6 बार	54
4) 8 दिन का	7 बार	56
5) 7 दिन का	6 बार	42
6) 6 दिन का	6 बार	36
7) 5 दिन का	6 बार	30
8) 4 दिन का	6 बार	24
9) अंतिम 36 दिन तक के उपवास में स्वर्गवास	1 बार	36
		योग - 336 दिन

व्रत नाम	उपवासों की संख्या
1. चारित्रशुद्धि व्रत	1234
2. तीस चौबीसी व्रत	720
3. कर्मदहन व्रत (तीन बार)	468
4. सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत (तीन बार)	270
5. सोलहकारण व्रत (16/16)	256
6. श्रुतपंचमी व्रत	36
7. विहरमान व्रत (20 तीर्थंकर व्रत)	20
8. दशलक्षण पर्व	10
9. सिद्धों के व्रत (8)	8
10. अष्टाह्निका व्रत	8
11. गणधरों के व्रत गणधरों के 1452 उपवास होते हैं। आचार्य श्री 200 ही कर पाये थे।	200
12. अतिरिक्त व्रत	6372
	योग 9602

आचार्यश्री ने अपने जीवन में 336+9602=9938 उपवास किये हैं।

आचार्यश्री द्वारा सन् 1914 से 1955 तक किये गये 42 चातुर्मासों की सूची –

	स्थान का नाम	अवस्था	सन्
1.	कागल ग्राम	क्षुल्लक अवस्था में	1914
2.	कोगनोली	क्षुल्लक अवस्था में	1915
3.	कुम्भोज	क्षुल्लक अवस्था में	1916

4.	बेलगाँव	क्षुल्लक अवस्था में	1917
5.	समडोली	ऐलक अवस्था में	1918
6.	नसलापुर	ऐलक अवस्था में	1919
7.	कागनोली	मुनि अवस्था में	1920
8.	नसलापुर	मुनि अवस्था में	1921
9.	ऐनापुर	मुनि अवस्था में	1922
10.	कोन्नूर	मुनि अवस्था में	1923
11.	समडोली	आचार्य पद प्राप्त	1924
12.	कुम्भोज	आचार्य अवस्था में	1925
13.	नांदडी	आचार्य अवस्था में	1926
14.	बाहुबली क्षेत्र	आचार्य अवस्था में	1927
15.	कटनी	आचार्य अवस्था में	1928
16.	ललितपुर	आचार्य अवस्था में	1929
17.	मथुरा	आचार्य अवस्था में	1930
18.	दिल्ली	आचार्य अवस्था में	1931
19.	जयपुर	आचार्य अवस्था में	1932
20.	ब्यावर	आचार्य अवस्था में	1933
21.	उदयपुर	आचार्य अवस्था में	1934
22.	गोरल	आचार्य अवस्था में	1935
23.	प्रतापगढ़	आचार्य अवस्था में	1936
24.	गजपंथा	चारित्रचक्रवर्ती पद प्राप्त	1937
25.	बारामती	चा.च. आचार्य अवस्था में	1938
26.	पावागढ़	चा.च. आचार्य अवस्था में	1939
27.	गोरल	चा.च. आचार्य अवस्था में	1940
28.	अकलूज	चा.च. आचार्य अवस्था में	1941

29.	कोरोची	चा.च. आचार्य अवस्था में	1942
30.	डिग्गज	चा.च. आचार्य अवस्था में	1943
31.	कुंथलगिरि	चा.च. आचार्य अवस्था में	1944
32.	फलटन	चा.च. आचार्य अवस्था में	1945
33.	कवलाना	चा.च. आचार्य अवस्था में	1946
34.	सोलापुर	चा.च. आचार्य अवस्था में	1947
35.	फलटन	चा.च. आचार्य अवस्था में	1948
36.	कवलाना	चा.च. आचार्य अवस्था में	1949
37.	गजपंथा	चा.च. आचार्य अवस्था में	1950
38.	बारामती	चा.च. आचार्य अवस्था में	1951
39.	लोणंद	चा.च. आचार्य अवस्था में	1952
40.	कुंथलगिरि	चा.च. आचार्य अवस्था में	1953
41.	फलटन	चा.च. आचार्य अवस्था में	1954
42.	कुंथलगिरि	चा.च. आचार्य अवस्था में	1955

(1955, भादों सुदी 2 को स्वर्गवासी हुए)

मानव कल्याण का आधार सत्य और अहिंसा

(आचार्य महाराज का अंतिम अमर संदेश)

(परमपूज्य आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने कुंथलगिरि तीर्थ पर आमरण अनशन के 26वें दिन ता. 8 सितम्बर को शाम के 5 बजे मराठी में मानव-कल्याण के लिए जो उपदेश दिया, वह रिकार्ड किया गया था। आचार्य श्री के उस अमर संदेश का हिन्दी में अनुवाद समाज की जानकारी के लिए यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।)

ॐ नमः सिद्धेभ्यः-3, पंचभरत, पंचऐरावत के भूत भविष्यत्काल संबंधी भगवानों को नमस्कार हो। तीस चौबीसी भगवानों को, श्री सीमन्धर आदि बीस तीर्थंकर भगवानों को नमस्कार हो। भगवान ऋषभदेव से महावीर पर्यंत के 1452 गणधर देवों को नमस्कार, चारण ऋद्धिधारी मुनियों को नमस्कार,चौंसठ ऋद्धिधारी मुनीश्वरों को नमस्कार। अन्तकृतकेवलियों को नमस्कार। प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थ में होने वाले 10-10 घोरोपसर्ग विजेता मुनीश्वरों को नमस्कार हो।

ग्यारह अंग चौदह पूर्व प्रमाण शास्त्र महासमुद्र है। उनका वर्णन करने वाले श्रुतकेवली नहीं हैं, उसके ज्ञाता केवली, श्रुतकेवली भी अब नहीं हैं। उसका वर्णन हमारे सदृश क्षुद्र मनुष्य क्या कर सकते हैं? जिनवाणी सरस्वती 'श्रुतदेवी' अनन्त समुद्र तुल्य है। उसमें कहे गये जिनधर्म को जो धारण करता है, उसका कल्याण होता है, उसको अनन्त सुख मिलता है, उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है ऐसा नियम है। एक अक्षर ॐ है। उस एक ॐ अक्षर को धारण करके जीवों का कल्याण हुआ है। दो बन्दर लड़ते-लड़ते सम्मेदशिखर से स्वर्ग गये। सेठ सुदर्शन तिर गया। सप्त व्यसनधारी अंजन चोर तिर गया। कुत्ता महानीच जाति का जीव जीवन्धरकुमार के णमोकार मंत्र के उपदेश से देव हुआ।

इतनी महिमा जैनधर्म की है किन्तु (श्वांस लेते हुए) जैनियों को अपने धर्म में श्रद्धा नहीं है।

जीव और पुद्गल पृथक्-पृथक् हैं –

अनन्त काल से जीव पुद्गल से भिन्न है, यह सब लोग जानते हैं पर विश्वास नहीं करते। पुद्गल भिन्न है जीव अलग है। तुम जीव हो, पुद्गल जड़ है इसमें ज्ञान नहीं है, ज्ञान-दर्शन चैतन्य जीव में है। स्पर्श-रस-गंध-वर्ण पुद्गल में हैं, दोनों के गुण, धर्म अलग-अलग हैं। पुद्गल के पीछे पड़ने से जीव को हानि होती है। तुम जीव हो, मोहनीय कर्म जीव का घात करता है। जीव के पक्ष से पुद्गल का अहित है। पुद्गल से जीव का घात होता है। अनन्त सुख स्वरूप मोक्ष जीव को ही होता है पुद्गल को नहीं, सब जग इसको भूला है। जीव पंच पापों में पड़ा है। दर्शन मोहनीय के उदय ने सम्यक्त्व का घात किया है। क्या करना चाहिए? सुख प्राप्ति की इच्छा है, तो दर्शन मोहनीय का घात करो, चारित्र मोह का नाश करो, आत्मा का कल्याण करो, यह हमारा आदेश व उपदेश है। मिथ्यात्व कर्म के उदय से जीव संसार में फिरता है। मिथ्यात्व का नाश करो, सम्यक्त्व को प्राप्त करो। सम्यक्त्व क्या है? सम्यक्त्व का वर्णन समयसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़, गोम्मटसार आदि बड़े-बड़े ग्रंथों में है, पर इन पर श्रद्धा कौन करता है? आत्म-कल्याण करने वाला ही श्रद्धा करता है। मिथ्यात्व को धारण मत करो, यह हमारा आदेश व उपदेश है। ॐ सिद्धाय नमः।

कर्म की निर्जरा का साधन आत्म-चिंतन –

तुम्हें क्या करना चाहिए? दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय करो, आत्मचिन्तन से दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय होता है, कर्मों की निर्जरा भी आत्मचिन्तन से होती है।

दान से, पूजा से, तीर्थ यात्रा से पुण्य-बंध होता है। हर धर्म कार्य

से पुण्य का बंध होता है किन्तु कर्म की निर्जरा का साधन आत्म-चिंतन है। केवलज्ञान का साधन-आत्म-चिंतन है। अनन्त कर्मों की निर्जरा का साधन आत्म-चिन्तन है। आत्म-साधन के सिवा कर्म-निर्जरा नहीं होती है। कर्म निर्जरा बिना केवलज्ञान नहीं होता और केवलज्ञान बिना मोक्ष नहीं होता। क्या करें? शास्त्रों में आत्मा का ध्यान उत्कृष्ट 6 घड़ी, मध्यम 4 घड़ी और जघन्य 2 घड़ी कहा है। कम से कम 10-15 मिनट ध्यान करना चाहिए। हमारा कहना यह है कि कम से कम 5 मिनट तो आत्म-चिन्तन करो। इसके बिना सम्यक्त्व नहीं होता है। सम्यक्त्व के पश्चात् संयम धारण करो। सम्यक्त्व होने पर 66 सागर यहाँ रहोगे। चारित्र मोहनीय का क्षय करने के लिए संयम धारण करना चाहिए, इसके बिना चारित्र मोहनीय का क्षय नहीं होता। संयम धारण किये बिना सातवाँ गुणस्थान नहीं होता और सातवें गुणस्थान के बिना उच्च आत्म-अनुभव नहीं होता। वस्त्रधारी को सातवाँ गुणस्थान नहीं होता है।

सम्यक्त्व और संयम धारण के बिना समाधि संभव नहीं –

ॐ सिद्धाय नमः। समाधि दो प्रकार की है – एक निर्विकल्प समाधि और दूसरी सविकल्प समाधि। गृहस्थ सविकल्प समाधि धारण करता है। मुनि हुए बिना निर्विकल्प समाधि नहीं होगी अतएव निर्विकल्प समाधि पाने के लिए पहले मुनि पद धारण करो। इसके बिना निर्विकल्प समाधि कभी नहीं होगी। निर्विकल्प समाधि हो तो सम्यक्त्व होता है, ऐसा कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है। आत्म-अनुभव के सिवाय नहीं है। व्यवहार सम्यक्त्व खरा (परमार्थ) नहीं है। फूल जैसे फल का कारण है, व्यवहार सम्यक्त्व आत्म-अनुभव का कारण है। आत्म-अनुभव होने पर खरा (परमार्थ) सम्यक्त्व होता है। निर्विकल्प समाधि मुनि पद धारण करने पर होती है। सातवें गुण-स्थान से बारहवें पर्यंत निर्विकल्प समाधि होती है। तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान होता है, ऐसा शास्त्र में कहा है। यह

विचार कर डरो मत कि क्या करें? संयम धारण करो। सम्यक्त्व धारण करो। इसके सिवाय कल्याण नहीं है, संयम और सम्यक्त्व के बिना कल्याण नहीं है। पुद्गल और आत्मा भिन्न हैं, यह ठीक-ठीक समझो। तुम सामान्य रूप से जानते हो, भाई, बन्धु, माता, पिता पुद्गल से संबंधित हैं, उनका जीव से कोई संबंध नहीं है। जीव अकेला है। बाबा (भाइयों)! जीव का कोई नहीं है। जीव भव-भव में अकेला जावेगा। देवपूजन, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, संयम, दान और तप ये धर्म कार्य हैं। असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या, वाणिज्य ये 6 कर्म कहे गये हैं। इनसे होने वाले पापों का क्षय करने को उक्त धर्म क्रिया कही है, इससे मोक्ष नहीं है। मोक्ष किससे मिलेगा? केवल आत्म-चिंतन से मोक्ष मिलेगा और किसी क्रिया से मोक्ष नहीं होता।

जिनवाणी का अपूर्व माहात्म्य –

भगवान की वाणी पर पूर्ण विश्वास करो, इसके एक-एक शब्द से मोक्ष पा जाओगे। इस पर विश्वास करो। सत्य वाणी यही है कि एक आत्म-चिंतन से सब साध्य है और कुछ नहीं है। बाबा (भाई)! राज्य, सुख, सम्पत्ति, संतति सब मिलते हैं, मोक्ष नहीं मिलता है। मोक्ष का कारण एक आत्म-चिंतन है। इसके बिना सद्गति नहीं होती है।

सारांश-''धर्मस्य मूलं दया'' प्राणी का रक्षण दया है। जिन धर्म का मूल क्या है? ''सत्य और अहिंसा।'' मुख से सब सत्य-अहिंसा बोलते हैं। मुख से भोजन कहने से क्या पेट भरता है? भोजन किये बिना पेट नहीं भरता है, क्रिया करनी चाहिए। बाकी सब काम होंगे। सत्य अहिंसा पालो। सत्य से सम्यक्त्व है। अहिंसा से दया है। किसी को कष्ट नहीं दो। यह व्यवहार की बात है। सम्यक्त्व धारण करो, संयम धारण करो। इसके बिना कल्याण नहीं हो सकता।

ॐ सिद्धाय नमः

चारित्रचूड़ामणि आचार्य श्री वीरसागर स्तुतिः

(सप्तविभक्ति समन्वित)

श्रीवीरसागराचार्यः, पट्टसूरिः सु विश्रुतः।
श्रीवीरसागराचार्यं, वंदे भक्त्या पुनः पुनः।।1।।

शिष्याः सुशिक्षिताः नित्यं, वीरसागरसूरिणा।
नमोऽस्तु भक्तिभावेन, वीरसागरसूरये।।2।।

श्रीवीरसागराचार्यात्, ख्याता पट्टपरम्परा।
श्रीवीरसागरस्यापि, गांभीर्यादिगुणाः स्थिताः।।3।।

श्रीवीरसागराचार्ये, विद्वान्सोऽपि नता मुदा।
श्रीवीरसागराचार्य! कृपां कृत्वा पुनीहि माम्।।4।।

आचार्य श्री वीरसागर स्तुतिः

–उपजाति छन्द –

स्वात्मैकनिष्ठं नृसुरादिपूज्यं। षड्जीवकायेषु दयार्द्रचित्तं।।
श्रीवीरसिंधुं भववार्धिपोत-माचार्यवर्यं त्रिविधं नमामि।।1।।

यो भव्यजीवाननुगृह्य सम्यक्। वृत्तं सुबोधं श्रयणं ददानः।।
दोषादिजातेऽपि विशोध्यमानः। सार्वो गभीरः पृथुधर्मतीर्थः।।2।।

रत्नत्रयाख्यं निधिमादधानः। निष्किंचनोऽयं कथमुच्यते ज्ञैः।।
सत्त्वानुकंपी च विशुद्धबुद्धिः। कर्मारिकक्षाय खरः कुठारः।।3।।

स्वान्तान्धकारान्तकभास्करः स्यात्। स्याद्वादविद्योदधिचंद्रमाश्च।।
त्राता विधाता शरणं गतानाम्। आश्रीयसेऽतस्स्वयमेव भव्यैः।।4।।

स्वाध्यायध्यानादिक्रियासु सक्तः। संसारभोगेषु विरक्तचित्तः।।
बाह्यांतरंगं तप आचरन् यो। दुःखाभिभूतो न हि बाह्यक्लेशात्।।5।।

स्वात्मोत्थसौख्यास्वदनेऽनुरक्तः। वैभाविके वैषयिके विरक्तः।।
कंदर्पमायाक्रुधमानलोभान्। जित्वा रिपून् ''वीर'' इति प्रसिद्धः।।6।।

यो मुख्यशिष्यो गुरुशान्तिसिन्धोः। सूरेः चतुःसंघहिते वरिष्ठः।।
दीक्षाव्रतादेशविधौ विधिज्ञः। तं सूरिवर्यं प्रणमामि भक्त्या।।7।।

हे वीर! हे धीर! भवाब्धितीर! कारुण्यरत्नाकर! विश्वसेव्य।।
भव्याब्जबन्धो! सुविनेयजीवान्। संसारदुःखाल्लघु पाहि मां च।।8।।

त्वां संघसंवर्धक! संस्तवीमि। हे मोहसंमर्दक! नंनमीमि।।
कामारिजेतः गुरुवीरसिन्धो। पादारविंदद्वयमाश्रयामि।।9।।

नमामि स्तौम्यहं नित्यं, ज्ञानमत्यार्यिका मुदा।
गुरुभक्त्या तितीर्षामि, संसारार्णवदुस्तरम्।।10।।

आचार्य श्री वीरसागर स्तुतिः

–वसंततिलका छन्द –

सिद्धिप्रदं सकलतापहरं प्रसिद्धं,
रत्नत्रयं परमसौख्यनिधिं दधानः।
निष्किंचनोऽपि विबुधैः खलु कथ्यमानः,
श्री वीरसागरगुरुर्हृदि तिष्ठतान्मे।।1।।

सिद्धांतसारमवगम्य हितोपदेशी,
गंभीर-धीर-मितवाक्प्रभृतेर्गुणाब्धिः।
आचार-शास्त्रमवगाह्य पटुः क्रियासु,
श्रीवीरसागरगुरुर्हृदि तिष्ठतान्मे।।2।।

आत्मस्वभाव-निरतः शिवसौख्यलिप्सुः,
मोक्षैक-साधनविधौ कुशलो महात्मा।
आजन्मकामविजयी मुनिनायकस्त्वं,
श्रीवीरसागरगुरुर्हृदि तिष्ठतान्मे।।3।।

अध्यात्म-शास्त्रनिपुणो निजतत्त्ववेदी,
साम्यामृतस्वरसनिर्झरणी-निमग्नः।
स्वात्मैकसौख्यरस-तृप्तमनाः नितांतं,
श्रीवीरसागरगुरुर्हृदि तिष्ठतान्मे।।4।।

लोकैकचित्त-जलजप्रतिबोधसूर्यः,
आल्हादने भुवि विधुर्भविकौमुदीनाम्।
पुण्याँकुरोज्जननसोदक-मेघतुल्यः,
श्रीवीरसागरगुरुर्हृदि तिष्ठतान्मे।।5।।

नंनमीमि त्रिशुद्ध्याहं, सूरिं श्रीवीरसागरम्।
ज्ञानमत्यै श्रियै नित्यं, संस्तवीमि पुनः पुनः।।6।।

आचार्य श्री वीरसागर स्तुति

–शंभु छन्द –

सिद्धार्थतनुज श्री वीरप्रभू, सम्पूर्ण सिद्धि के दाता हैं।
उनको शत शत वंदन मेरा, भक्तों के भाग्य विधाता हैं।।
सब भाषामय उनकी वाणी, भविजन मनकमल खिलाती है।
गणधरगुरुओं के वंदन से, भवदधि नौका मिल जाती है।।1।।

इस दुषमकाल में कुन्दकुन्द-आचार्य आदि गुणमणि भास्कर।
इन सबको वंदन बार-बार, ये रत्नत्रय निधि के आकर।।
बीसवीं सदी के प्रथम सूरि, चारित्रचक्रवर्ती गुरुवर।
श्री शांतिसागराचार्य प्रवर, इनको वंदूँ नित अंजलिकर।।2।।

औरंगाबाद नगर उत्तम, महाराष्ट्र प्रान्त में माना है।
है 'ईर' ग्राम वहाँ पर सुंदर, जिनमंदिर से अभिरामा है।।
जिनभक्त रामसुख सेठ वहाँ, खण्डेलवाल जातीभूषण।
पतिव्रता आदि गुण से भूषित, भागूबाई पत्नी उत्तम।।3।।

इनके सुत हीरालाल हुए, जो गंगवाल गोत्रीय प्रथित।
विक्रत संवत् उन्नीस शतक, तेतिस आषाढ़ पूर्णिमा तिथि।।
जिनधर्म संस्कारों से यह, संस्कारित बालक युवा हुए।
ऐलक श्रीपन्नालाल निकट, ब्रह्मचर्यव्रतादिक ग्रहण किए।।4।।

विक्रम संवत् उन्नीस शतक, अस्सी फाल्गुन सुदि सप्तमि में।
श्रीशांतिसिंधु गुरुवर्य निकट, क्षुल्लक दीक्षा ले शिष्य बने।।
शुभ नाम वीरसागर पाकर, हो गए वीरता के सागर।
षट्मास अनन्तर आश्विन सुदि, एकादशि को हुए मुनीप्रवर।।5।।

चारित्र शिरोमणि धीर-वीर, गंभीर गुणों के रत्नाकर।
परिषह उपसर्गजयी गुरुवर, दीक्षा शिक्षा दाता सुखकर।।
चउविध संघ का संग्रह-अनुग्रह-निग्रह करने में भी सक्षम।
ऐसे गुरुवर को नमूँ सतत, ये जग में मंगलप्रद उत्तम।।6।।

श्रीवीरसंवत् चौबीस सौ इक्यासी कुंथलगिरि तीरथ से।
आचार्य शांतिसागर जी ने, भेजा आचार्य स्वपद रुचि से।।
द्वितीय भाद्रपद वदि सप्तमि, जयपुर खान्या में चउसंघ ने।
विधिवत् आचार्यपट्ट देकर, सर्वोच्च सूरि माना सबने।।7।।

मुझको महाव्रत दीक्षा देकर, आर्यिका ज्ञानमति नाम दिया।
गुरु आशिष से मैंने भी कुछ, लिखकर निज सार्थक नाम किया।।
वीराब्द चौबिस सौ त्र्यासी में, आश्विन आमावस्या तिथि में।
शुभ श्रेष्ठ समाधिमरण करके, खान्या को तीर्थ किया गुरु ने।।8।।

–दोहा –

श्री गुरुवर को भक्ति से, वंदूँ बारम्बार।
रत्नत्रय निधि पूर्ण हो, मिले स्वात्मसुखसार।।9।।

ॐ ह्रीं श्री अनन्तानंततीर्थंकरादिमोक्षगामिमहापुरुष-जन्मभूमि-अयोध्याशाश्वततीर्थक्षेत्राय नमः।
ॐ ह्रीं श्रीवीरसागराचार्यपरमेष्ठिने नमः।

आचार्य श्री वीरसागर स्तुति

–दोहा –

भववारिधि में भव्य के, कर्णधार आचार्य।
भक्ति भाव से मैं नमूँ, होवो मम आधार्य।।1।।

–स्रग्विणी छंद –

मैं नमूँ मैं नमूँ मैं नमूँ सूरि को।
पाप संताप मेरा सबे दूर हो।।
सूरि! तेरे बिना कोई ना आपना।
शीघ्र संसार वाराशि से तारना।।2।।

शांतिसिंधु गुरु प्रथम सूरी हुए।
बीसवीं सदि के अग्रणी गुरु हुए।।
आप भी तो उन्हीं के प्रथम शिष्य हो।
पट्ट आचार्य भी तो प्रथम मुख्य हो।।3।।

वीरसागर गुरु नाम सार्थक किया।
वीरतादी गुणों से प्रसिद्धी लिया।।
पंडितों से सदा धर्मचर्चा किया।
तत्त्वज्ञानी बने स्वात्म आनन्द लिया।।4।।

शिष्य का आप संग्रह किया चाव से।
नित्य उनपे अनुग्रह किया भाव से।।
दोष लख आप निग्रह किया युक्ति से।
दण्ड देकर किया शुद्धि निज शक्ति से।।5।।

मेरु सम धीर गंभीर पयसिंधु सम।
सूर्य सम तेजधृत सौम्य चन्द्रैक सम।।
मातृवत् रक्षते पितृवत् पालिया।
धर्म उपदेश से भय अघ टालिया।।6।।

कृष्ण नीलादि लेश्या नहीं आपमें।
पीत पद्मादि लेश्या धरीं आपमें।।
देश-कुल-जाति से शुद्ध हो श्रेष्ठ हो।
चार विध संघस्वामी सदा इष्ट हो।।7।।

जन्म व्याधी हरण आप ही वैद्य हो।
कष्ट उपसर्ग से आप नहिं भेद्य हो।।
सर्व साधूगणों से सदाराध्य भी।
सर्व जगवंद्य भविवृंद आराध्य भी।।8।।

मूलगुण और उत्तरगुणों को धरा।
सर्वपरिषहजयी मोक्ष में चित धरा।।
नग्नमुद्रा यथाजात गुरुवर्य जी।
वस्त्र शृंगार विरहित धरमधुर्य जी।।9।।

रत्नत्रय युक्त फिर भी अकिंचन्य ही।
मोहग्रन्थी रहित आप निर्ग्रन्थ ही।।
हो कृपा सिंधु आनन्द भण्डार हो।
कर्मवन दग्ध करने को अंगार हो।।10।।

ब्रह्मचारी व्रती फिर भी तुम पास में।
सर्वदा है तपस्या रमा साथ में।।
बुद्धिमन् भी सदा तुम चरण वंदते।
लक्ष्मिपति भी सदा पूजते अर्चते।।11।।

जो तुम्हारे चरण की करें अर्चना।
रत्नत्रय संपदा से धरें जन्म ना।।
गुरो! मैं भी करूँ भक्ति इस हेतु से।
'ज्ञानमति' शुद्ध हो, मैं छुटूँ दुःख से।।12।।

प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर महाराज का संक्षिप्त परिचय

स्वस्ति श्री मूलसंघ में कुन्दकुन्दाम्नाय, सरस्वती गच्छ, बलात्कारगण में बीसवीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टशिष्य आचार्यश्री वीरसागर महाराज हुए हैं। उनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है–

जन्म – आषाढ़ शु. 15, सन् 1876, वि.सं. 1933

ग्राम – वीर (जि.-औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

नाम – हीरालाल जैन

जाति, गोत्र – खण्डेलवाल, गंगवाल

पिता – श्री रामसुख जैन

माता – श्रीमती भाग्यवती जैन (भागू बाई)

क्षुल्लक दीक्षा – फाल्गुन शु. 7, सन् 1923 (वि.सं. 1980)

नाम – श्री वीरसागर महाराज

मुनिदीक्षा – आश्विन शु. 11, सन् 1924 (वि.सं. 1981)

ग्राम – समडोली-महाराष्ट्र

दीक्षागुरु – चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज

आचार्य पद घोषणा – कुंथलगिरि में आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज द्वारा प्रथम भाद्रपद शु. 7, सन् 1955 (वि.सं. 2012)

आचार्यपदारोहण – द्वि. भाद्रपद कृ. 7, सन् 1955 (वि.सं. 2012)

स्थान – खानिया-जयपुर (राज.)

समाधिमरण – आश्विन कृ. अमावस्या, सन् 1957 (वि.सं. 2014)

स्थान – खानिया-जयपुर (राज.)

आपके द्वारा दीक्षित मुनि श्री शिवसागर जी एवं मुनि श्री धर्मसागर जी इसी परम्परा के द्वितीय एवं तृतीय पट्टाचार्य बने हैं। ऐसे ही आपके द्वारा दीक्षित आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर महाराज आदि अनेक मुनि एवं आर्यिका श्री वीरमती जी, आर्यिका श्री सुमतिमती जी, गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती जी, गणिनी आर्यिका श्री सुपार्श्वमती जी आदि अनेक आर्यिकाएँ प्रसिद्ध हुई हैं।

द्वितीय पट्टाचार्य श्री शिवसागराचार्य के द्वारा दीक्षित मुनि श्री अजितसागर, मुनि श्री श्रेयांससागर व मुनि श्री अभिनंदनसागर क्रम से चतुर्थ, पंचम एवं षष्ठ पट्टाचार्य हुए हैं एवं छठे पट्टाचार्य श्री अभिनंदनसागर जी द्वारा दीक्षित मुनि श्री अनेकांतसागर जी इसी पट्ट परम्परा के सातवें पट्टाचार्य आज धर्मप्रभावना करते हुए श्री प्रथमाचार्य शांतिसागर जी की परम्परा को वृद्धिंगत कर रहे हैं।

दोहा- वीरसंवत् पच्चीससौ, पैंतालिस विख्यात।
भादों वदी चतुर्थतिथि, अतिशायी मम ख्यात।।1।।
गुरु भक्ती वश संकलन, पुण्यतिथी दिन हेतु।
'ज्ञानमती' चारित्रमयि, बने भवोदधि सेतु।।2।।

आचार्य श्री शांतिसागर चालीसा

–दोहा –

सन्मति शासन को नमूँ, नमूँ शारदा सार।
कुन्दकुन्द आचार्य की, महिमा मन में धार।।1।।

इसी शुद्ध आम्नाय में, हुए कई आचार्य।
सदी बीसवीं के प्रथम, शान्तिसागराचार्य।।2।।

ये चारित चक्री मुनी, गुरुओं के गुरु मान्य।
चालीसा इनका कहूँ, पढ़ो सुनो कर ध्यान।।3।।

–चौपाई –

जय श्री गुरुवर शान्तीसागर, मुनि मन कमल विकासि दिवाकर।।1।।
इस कलियुग के मुनिपथदर्शक, नमन करूँ गुरु चरणों में नित।।2।।
शास्त्रों में मुनियों की महिमा, लोग पढ़ा करते थे गरिमा।।3।।
भूधर द्यानत की कविताएँ, कहती हैं उन हृदय व्यथाएं।।4।।
वे तो तरस गये दर्शन को, आगम वर्णित मुनि वन्दन को।।5।।
नग्न दिगम्बर चर्या दुर्लभ, थी सौ वर्ष पूर्व धरती पर।।6।।
तब दक्षिण भारत ने पाया, एक सूर्य सा तेज दिखाया।।7।।
भोज ग्राम का पुण्य खिला था, वहाँ सुगन्धित पुष्प खिला था।।8।।
सत्यवती की बगिया महकी, भीमगौंडा की खुशियाँ झलकीं।।9।।
नाम सातगौंडा रक्खा था, बचपन से ही ज्ञानी वह था।।10।।
बाल विवाह किया बालक का, तो भी वह ब्रह्मचारीवत् था।।11।।
उनके मन वैराग्य समाया, जब श्री गुरु का दर्शन पाया।।12।।

श्री देवेन्द्रकीर्ति मुनिवर से, उन्नीस सौ चौदह इसवी में।।13।।
क्षुल्लक दीक्षा ली उत्तुर में, श्री शान्तीसागर बन चमके।14।।
फिर उन्निस सौ बीस में उनसे, दीक्षा ले मुनिराज बने थे।।15।।
मूलाचार ग्रंथ को पढ़कर, मुनिचर्या बतलाई घर-घर।।16।।
समडोली की जनता ने तब,पदवी दी आचार्य बने तुम।।17।।
संघ चतुर्विध बना तुम्हारा, जैनधर्म का बजा नगाड़ा।।18।।
दक्षिण से उत्तर भारत तक, कर विहार फैलाया था यश।।19।।
अंग्रेजों के शासन में तुम, पहुँचे इन्द्रप्रस्थ में ले संघ।।20।।
उनको गुरु का दर्श मिला था, जैन दिगम्बर पंथ खुला था।।21।।
धवल ग्रन्थ उद्धार कराया, नया प्रकाशन था करवाया।।22।।
पैंतिस वर्ष के मुनि जीवन में, साढ़े पच्चिस वर्ष तक तुमने।।23।।
उपवासों में समय बिताया, परम तपस्वी थी तुम काया।।24।।
सर्प ने तन पर क्रीड़ा कर ली, विष न चढ़ा पाया विषधर भी।।25।।
ली उत्कृष्ट समाधी तुमने, कुंथलगिरि पर सन् पचपन में।।26।।
भादों शुक्ला दुतिया तिथि में, करी समाधी प्रभु सन्निधि में।।27।।
पुनः वीरसागर मुनिवर ने, गुरु आज्ञा अनुसार शिष्य ने।।28।।
प्रथम पट्ट सूरी पद पाया, कुशल चतुर्विध संघ चलाया।।29।।
सन् उन्निस सौ सत्तावन में, शिवसागर आचार्य बने थे।।30।।
इसके बाद तृतीय पट्ट पर, था दिन सन् उन्नीस सौ उन्हत्तर।।31।।
धर्मसिन्धु आचार्य प्रवर बन, किया संघ का शुभ संचालन।।32।।
सन् उन्निस सौ सत्तासी में, चौथे सूरी अजित सिन्धु ने।।33।।
परम्परा क्रम में पद पाया, छत्तिस गुण को था अपनाया।।34।।
नब्बे सन् में पंचम पदवी, श्री श्रेयांससिन्धु मुनि को दी।।35।।

सन् उन्निस सौ बानवे में फिर, छठे सूरि अभिनन्दनसागर।।36।।
संघ चलाया सक्षमता से, शिष्यों के प्रति वत्सलता से।।37।।
दो सहस्र पन्द्रह इसवी सन्, छठे सूरि ने छोड़ा निज तन।।38।।
सप्तम पट्टाचार्य बने तब, अनेकांतसागर जी गुरुवर।।39।।
चलता रहे यही क्रम उत्तम, निष्कलंक परमेष्ठि सूरि बन।।40।।

–दोहा –

नमन शान्तिसागर गुरू, नमन ज्ञानमति मात।
उनकी शिष्या चंदना-मती रचित यह पाठ।।1।।
वीर संवत् पच्चीस सौ, ब्यालिस शुभ तिथि जान।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, पूरण गुरु गुणगान।।2।।
गुरुमणि माला परम्परा, का हो जग में वास।
वीरांगज मुनि तक रहे, यह निर्दोष प्रकाश।।3।।

-गुरुवंदना-

श्री शांतिसागरमुनीन्द्र! नमोऽस्तु तुभ्यम्,
सूरिस्त्वमेव प्रथमः किल संप्रतीह।।
पट्टाधिपः प्रथम एव च यः प्रसिद्धः,
तं वीरसागरगुरुं प्रणमामि भक्त्या।।1।।

आचार्य श्री शांतिसागर-वीरसागर जी की आरती

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी

तर्ज –नागिन धुन.....

आचार्यगुरुवर श्रीशांतिसागर श्रीवीरसागर की मंगल दीप प्रजाल के।
मैं आज उतारूँ आरतिया।।

सदी बीसवीं के श्री प्रथमाचार्य शांतिसागर हैं।
दक्षिण भारत भोजग्राम के, अनुपम रतनाकर हैं।। गुरु जी.....
उत्कृष्ट त्याग तपमूर्ति गुरू की मंगल दीप प्रजाल के,
मैं आज उतारूँ आरतिया।।1।।

भीमगौंडा पितु सत्यवती माँ ने जो बालक जनमा।
वह ही जैन श्रमण संस्कृति का उन्नायक बन चमका।। गुरु जी.....
देवेन्द्रकीर्ति मुनिवर जी के शिष्योत्तम श्री गुरुराज की,
मैं आज उतारूँ आरतिया।।2।।

शांतिसिंधु के प्रथम शिष्य श्री वीरसिन्धु मुनिवर जी।
पट्टाचार्य प्रथम बनकर कहलाए वीरसागर जी।। गुरु जी.....
ये ज्ञानमती गणिनी माता के दीक्षागुरु आचार्य थे,
मैं आज उतारूँ आरतिया।।3।।

शांतिसागराचार्य वीरसागराचार्य को वन्दन।
इनकी भक्ति से ही चन्दनामति करें मन पावन।।
गुरु जी करें सदा मन पावन।
इनकी पावन शुभ परम्परा में सप्तम तक आचार्य की।
मैं आज उतारूँ आरतिया।।4।।

भजन

-आर्यिका चन्दनामती

तर्ज-देख तेरे संसार की हालत.....

सबसे बड़े प्रभु, सबसे बड़े गुरु, सबसे बड़ी माता,
झुकाओ त्रय पद में माथा।।टेक.।।
सबसे बड़े प्रभु ऋषभदेव हैं।
कर्मभूमि के प्रथम देव हैं।।
यही ऋषभगिरि पर प्रगटित हो बने जगत त्राता,
झुकाओ त्रय पद में माथा।।1।।
सबसे बड़े गुरु शांतिसागर।
सन्त संघ के प्रथम दिवाकर।।
वर्तमान के सब सन्तों का है उनसे नाता,
झुकाओ त्रय पद में माथा।।2।।
सबसे बड़ी ज्ञानमति माता।
गणिनीप्रमुख सरस्वति माता।।
बाल ब्रह्मचारिणी प्रथम ये बनीं जगत माता,
झुकाओ त्रय पद में माथा।।3।।
अवध की ये अनमोल मणी हैं।
जैन जगत की शिरोमणी हैं।।
तभी ''चन्दनामति'' तीनों की जुड़ गई गुण गाथा,
झुकाओ त्रय पद में माथा।।4।।